डाक पंजीयन सं. जयपुर सिटी/101/2020-22 वर्ष : 08 अंक : 04 मूल्यः 5 रुपए पृष्ठ : 4 R.N.I. No. RAJHIN/2014/56746

शिखर दृष्टि जीवन की...

जयपुर >> बुधवार, 14 जुलाई, 2021

हिलव्यू समाचार

hillviewsamachar@gmail.com

साप्ताहिक समाचार पत्र

ओ दूर के मुसाफिर!

अभिनय के नए-नए आयाम गढ़ने वाले दिलीप साहब देश के पहले अभिनेता हैं जिनके नाम देश के सर्वाधिक पुरस्कार दर्ज़ हैं। उन्हें उनकी फिल्मों - दाग, आज़ाद, देवदास, नया दौर, कोहिनूर, लीडर, राम और श्याम तथा शक्ति के लिए आठ-आठ फिल्मफेयर पुरस्कार मिले। उनकी लिखित और बनाई फिल्म 'गंगा जमुना' को राष्ट्रीय पुरस्कार मिला। बोस्टन इंटरनेशनल फिल्म फेस्टिवल, कार्लोवी वेरी फिल्म फेस्टिवल और चेकोस्लोवाक अकादमी ऑफ आर्ट्स ने उन्हें सम्मानित किया गया। भारतीय उपमहाद्वीप में उनकी जैसी लोकप्रियता किसी और को नहीं मिली। भारत सरकार ने उन्हें सिनेमा के सर्वोच्च सम्मान 'दादासाहब फाल्के अवार्ड' से ही नहीं नवाज़ा,1980 में उन्हें मुंबई का शेरिफ और 2000 में राज्यसभा का सांसद भी बनाया। उधर पाकिस्तान की सरकार ने उन्हें अपने सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'निशान-ए-इम्तियाज़' से नवाज़ा और पाकिस्तान के पेशावर में उनके पैतृक घर को राष्ट्रीय धरोहर घोषित किया है। उन्हें जब सुपुर्द-ए- खाक किया गया तो सरहद के दोनों तरफ उनके असंख्य चाहने वालों की आंखें नम हुईं।

श्रद्धांजलि...

धुव गुप्त

दिलीप कुमार का गुज़र जाना हिंदी सिनेमा के सबसे सुनहरे दौर का पटाक्षेप है। यह अभिनय के उस मीलस्तम्भ के गुज़र जाने जैसा है जिस तक पहुंचने में फिल्म अभिनेताओं की कई पीढ़ियां गुज़र गईं। उनके किरदारों के साथ इस देश की कई पीढ़ियां जवान और बूढ़ी हुई हैं। उनके दर्द के साथ हम सब थोड़ा-थोड़ा रोए हैं। उनकी उदासी ने हम सबको थोड़ा उदास किया है। उनकी हंसी ने हमारे होंठों पर मुस्कान की कई लकीरें खींची है। उनका जाना ही नहीं, पिछली सदी के चौथे दशक में उनका उदय भी भारतीय सिनेमा की सबसे बड़ी घटना थी। ऐसी घटना जिसने हिंदी सिनेमा का चेहरा ही बदल दिया। पारसी थिएटर और नौटंकी की उस दौर की लाउड अभिनय-शैली को संयत, मानवोचित व्यवहार में बदलकर अभिनय का एक नया युग शुरू करने में कुंदन लाल सहगल के बाद उनकी सबसे बड़ी भूमिका थी। दिलीप कुमार हिंदी-उर्दू सिनेमा के पहले अभिनेता थे जिन्होंने साबित किया कि बगैर शारीरिक हावभाव और बड़े-बड़े संवादों के सिर्फ चेहरे की भंगिमाओं, आंखों और यहां तक कि ख़ामोशी से भी अभिनय किया जा सकता है। अपनी छह दशक लम्बी अभिनय-यात्रा में उन्होंने अभिनय की जिन ऊंचाईयों और गहराईयों का स्पर्श किया वह भारतीय सिनेमा के लिए असाधारण बात थी। बड़ी बात यह थी उन्होंने किसी स्कूल में अभिनय नहीं सीखा था। प्रयोग और अनुभव से खुद को जीवन भर फिल्म दर फिल्म तराशते रहे। उन्हें सत्यजीत राय ने 'द अल्टीमेट मेथड एक्टर' की संज्ञा दी थी।

पुणे की एक छोटी-सी कैंटीन से फिल्मों की बादशाहत तक का यूसुफ खान उर्फ़ दिलीप कुमार का सफ़र किसी परीकथा जैसा लगता है। उस दौर की लोकप्रिय अभिनेत्री और फिल्मकार देविका रानी ने उन्हें नया नाम और अवसर दिया। वर्ष 1941 में 'ज्वारभाटा' से अपनी फिल्मी पारी शुरू करने वाले दिलीप साहब को दर्शकों की स्वीकार्यता मिली फिल्म 'जुगनू' से। उसके बाद जो हुआ, वह इतिहास है। अपने पांच दशक लंबे फिल्म कैरियर में दिलीप साहब ने साठ से ज्यादा फिल्मों में अभिनय के नए-नए प्रतिमान गढ़े। वे पहले ऐसे अभिनेता थे जिनके व्यक्तित्व को ध्यान में रखकर फिल्मों की कहानियां और पटकथाएं ही नहीं, गीत और संगीत भी रचे जाते थे। हिंदी सिनेमा के तीन शुरूआती महानायकों में जहां राज कपूर को प्रेम के भोलेपन के लिए और देव आनंद को प्रेम की शरारतों के लिए जाना जाता है, दिलीप कुमार के हिस्से में प्रेम की व्यथा आई थी। प्रेम की व्यथा की अभिव्यक्ति का उनका अंदाज़ कुछ ऐसा था कि दर्शकों को उस व्यथा में भी ग्लैमर नज़र आने लगा था। इस अर्थ में दिलीप कुमार पहले अभिनेता थे जिन्होंने प्रेम की असफलता की पीड़ा को स्वीकार्यता दी। 'देवदास' उस पीड़ा का शिखर था। देवदास की भूमिका उनके पहले कुंदन लाल सहगल और उनके बाद शाहरूख खान ने भी निभाई, लेकिन दिलीप कुमार की वेदना और गहराई को कोई छू भी नहीं सका।

फिल्मों में प्रेम की व्यथा की जीवंत अभिव्यक्ति के कारण उन्हें 'ट्रैजेडी किंग' ज़रूर कहा गया, लेकिन यह भी सच है कि अपने अभिनय की विविधता और रेंज से उन्होंने लोगों को बार-बार चकित किया है। वह 'मेला', 'दीदार', 'उड़न खटोला', 'आदमी', 'दिल दिया दर्द लिया' का असफल आशिक हो, 'देवदास' का आत्महंता प्रेमी हो, 'शहीद' का क्रांतिकारी हो, 'मुगले आज़म' का विद्रोही शहज़ादा हो, 'गंगा जमना' का बागी डकैत हो, 'कोहिनूर', 'आज़ाद', 'राम और श्याम' का विदूषक हो, 'शक्ति' का सिद्धांतवादी पुलिस अफसर हो या 'गोपी' का मासूम ग्रामीण युवा - उनका हर किरदार उनके व्यक्तित्व पर फबता है। उनकी कोई भी फिल्म देखकर यही महसूस होता है इस भूमिका को दिलीप कुमार से बेहतर कोई कर ही नहीं सकता था। अपने कैरियर के उत्तरार्द्ध में भी उन्होंने 'मशाल', 'कर्मा', 'विधाता', 'क्रान्ति', 'दुनिया' और 'सौदागर' जैसी फिल्मों में बेहतरीन चरित्र भूमिकाएं निभाईं। 1998 में आखिरी बार उन्हें फिल्म 'क़िला' में देखा गया जिसके बाद उन्होंने फिल्मों को अलविदा कह दिया।

[शेष पेज 2 पर

आखिर इसी मिट्टी में विलीन दिलीप कुमार

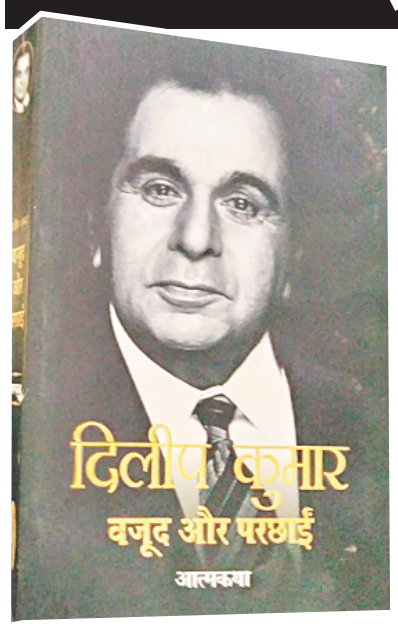

ईश मधु तलवार

1988 के शुरुआती दिनों में मुझे अपने जन्म स्थान पेशावर से एक चाहने वाले का खत मिला। इसमें उसने लिखा था कि पेशावर ने खूब तरक्की कर ली लेकिन वहां ब्लड बैंक नहीं था। इस वजह से थैलेसीमिया के मरीजों के लिए खून की दिक्कत हो जाती थी। यहां पहली बार एक सामाजिक संस्था ने एक रक्तदान केंद्र और एक ब्लड बैंक की स्थापना की थी ताकि खून के मरीजों के इलाज में सहूलियत हो जाए। मेरे उस चाहने वाले ने मुझसे पूछा था कि क्या मैं उसके उद्घाटन के लिए आ सकता हूं?

पेशावर अब मेरे ख्यालों में उस तरह से मौजूद नहीं था, हालांकि मैं और राज कपूर जब मिलते थे तो वहां के बचपन के दिनों को याद किया करते थे। फिर भी एक अच्छे काम के लिए पेशावर जाने का न्यौता ऐसा था कि मैं मना नहीं कर सकता था।

जैसी कि कल्पना की जा सकती है, मेरी तरफ से इस यात्रा की तैयारी बड़े स्तर पर होने जा रही थी, क्योंकि मैं वहां अपने सहयोगियों, परिवार और मीडिया के लोगों के साथ जाने वाला था।...हमारे सफर से पहले हमें पता चला कि पायलटों में इस बात को लेकर होड़ मची हुई थी कि पाकिस्तान एयरलाइंस की उस फ्लाइट को कौन चलाएगा जिसमें मैं पाकिस्तान की यात्रा पर पहली बार जाऊंगा।

वहां जाने की तैयारियों के बीच जिसका इंतजाम नसीम आपा और सायरा देख रही थीं- मैंने पाया कि मैं बहुत खुश था कि मुझे एक बार फिर पेशावर जाने का मौका मिल रहा था, उस धरती पर जो कभी हिंदुस्तान का हिस्सा था, जिस देश को मैं गर्व के साथ अपना कहता था। जब अगस्त 1947 में देश का बंटवारा हुआ और आगा जी (पिताजी) को यह पता चला कि अब उनका प्यारा पेशावर पाकिस्तान में है, तो जाहिर है कि वह बड़े दुखी हुए थे। जब लोग उनसे यह कहते थे कि वे पेशावर जाएं और वहां अपनी संपत्ति पर कब्जा करें, तो उनका यही जवाब होता था कि हम हिंदुस्तान में ही रहेंगे और यहीं मरेंगे भी।'

वे हिंदुस्तान में ही जिये,
हिंदुस्तान में ही मरे!
(दिलीप कुमार की आत्मकथा 'वजूद और परछाईं' पढ़ते हुए)

दिलीप कुमार की महफ़िल में दानसिंह!

दिलीप कुमार की जयपुर के साथ भी कई यादें जुड़ी हैं। वे 1961 में अपनी खुद की प्रोड्यूस की गई ब्लॉकबस्टर फ़िल्म 'गंगा जमना' के प्रोमोशन के लिए जब जयपुर आए तो उस समय अद्भुत नज़ारा था। वे जयपुर के चौड़ा रास्ता स्थित सिनेमा हॉल 'प्रेमप्रकाश टॉकीज' में एक शाही बग्गी में बैठ कर पहुंचे। उन्हें देखने के लिए तब हजारों लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई। उस दौर में दिलीप कुमार के प्रति लोगों में एक अजीब दीवानगी थी। उन दिनों 'गंगा जमना' फ़िल्म का यह गाना जयपुर की गलियों में भी खूब गूंज रहा था- 'नैन लड़वैये तो मनवा में कसक होइबे करी।'

बाद में प्रेमप्रकाश टॉकीज के मालिक सेठ हरीश चंद्र गोलछा ने दिलीप कुमार के सम्मान में रात्रि-भोज दिया। इस प्राइवेट महफ़िल में दिलीप कुमार ने गज़लें गा कर सबको चौंका दिया। खास बात यह कि दिलीप कुमार की इस महफ़िल में जयपुर के महान संगीतकार दान सिंह भी मौजूद थे, जो तस्वीर में सबसे बाएं दिखाई दे रहे हैं। वही दान सिंह, जिनके कंपोज किए गए गीत-'वो तेरे प्यार का ग़म....' और 'ज़िक्र होता है जब क़यामत का...' हम आज भी गुनगुना लेते हैं। लक्ष्मीकांत और प्यारे लाल इन्हीं गानों में दान सिंह के सहायक थे। दिलीप कुमार अब नहीं हैं, लेकिन उनकी इस सुरीली महफ़िल की कल्पना ही की जा सकती है।

तस्वीर, विवरण सौजन्य: प्रकाश भंडारी
ईश मधु तलवार की फेसबुक पोस्ट से

'एक इतिहास का अंत'

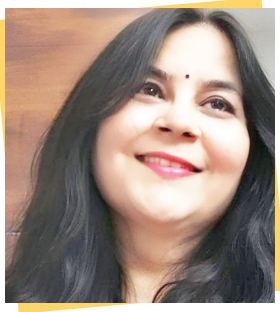

भावना ठाकर

दिलीप कुमार की मृत्यु की अफ़वाहें कई बार उठीं पर सब चाहते थे अफ़वाह अफ़वाह तक ही सीमित रहे। एक जानदार अदाकार अजर-अमर रहे पर आख़िरकार दिलीप कुमार की साँसों ने तन से नाता तोड़ ही लिया। जी हाँ फ़िल्म जगत के मशहूर अभिनेता अब इस दुनिया में नहीं रहे।

एक समय फ़िल्म जगत पर एकचक्री शासन करने वाले ट्रेजिडी किंग यानी दिलीप कुमार के इंतकाल के साथ फ़िल्म जगत के एक अमर इतिहास का समापन हो गया। दिलीप कुमार उर्फ़ युसुफ़ ख़ान भारतीय हिन्दी सिनेमा के प्रसिद्ध अभिनेता थे। दिलीप कुमार को अपने दौर का बेहतरीन अभिनेता माना जाता है, गंभीर भूमिकाओं के लिए मशहूर होने के कारण उन्हे 'ट्रेजिडी किंग' भी कहा जाता था।

दिलीप कुमार का जन्म पाकिस्तान के पेशावर में लाला गुलाम के यहाँ हुआ था। इनके 12 भाई बहन थे। इनके पिता फल बेचा करते थे व अपने मकान का कुछ हिस्सा किराये में देकर जीवनयापन करते थे। 1940 में अपने पिता से मतभेद के चलते उन्होंने मुंबई वाले घर को छोड़ दिया और पुणे चले गए।

दिलीप कुमार ने अपने करियर की शुरुआत फिल्म 'ज्वार भाटा' से की, जो वर्ष 1944 मे आई। हालांकि यह फ़िल्म सफल नहीं रही। उनकी पहली हिट फ़िल्म 'जुगनू' थी। 1947 में रिलीज़ हुई इस फ़िल्म ने बॉलीवुड में दिलीप कुमार को हिट फ़िल्मों के स्टार की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया। फ़िल्म 'अंदाज़' में दिलीप कुमार ने पहली बार राजकपूर के साथ काम किया। यह फ़िल्म एक हिट साबित हुई। दीदार और देवदास जैसी फ़िल्मों में गंभीर भूमिकाओं के लिए मशहूर होने के कारण उन्हें ट्रेजिडी किंग कहा जाने लगा और 1960 के दशक में आई इनकी फिल्म 'मुग़ले आज़म' साल 2008 तक हिन्दी सिनेमा में बॉक्स ऑफिस पर सबसे ज्यादा सफल फिल्म रही।

दिलीप कुमार और मधुबाला की रिलेशनशिप के बारे में तब बहुत सी खबरें आती रहती थी, लेकिन मधुबाला के पिताजी उनकी शादी के लिए नहीं माने इस कारण ये रिलेशनशिप आगे नहीं बढ़ सकी।

सायरा बानो के मुताबिक दिलीप कुमार को वह तब से चाहती थीं जब वो केवल 12 साल की थीं। फ़िल्म 'दाग' में दिलीप कुमार को देखने के बाद वे उन्हें अपना दिल दे बैठी थीं।

[शेष पेज 2 पर

अधूरी ख़्वाहिश...

डॉ.अरशी ज़ाफ़री खान

बात उन दिनों की है जब मैं सेंट जेवियर स्कूल आगरा में दूसरी क्लास में थी। घर स्कूल के पास ही था और स्कूल की आया जी ही घर लेने आती थीं। रोजाना की तरह उस दिन भी वो मेरी उंगली पकड़ कर चौराहा पार कर ही रही थीं कि अचानक ही काफी भीड़ इकट्ठी होती गई, ट्रेफिक भी जाम होता गया। पुलिस फ़ोर्स भी मौजूद थी। दिलीप कुमार-दिलीप कुमार की आवाजें ही सुनाई दे रही थी। उस दिन दिलीप कुमार जी का आगरा आना हुआ था और वो अपने प्रशंसकों से मिलने के लिए वहां रुके थे, उसके बाद उनको ताजमहल रवाना होना था।

मेरी आया जी भी उनकी एक झलक पाने के लिए सब कुछ भूल गईं। मेरी उंगली उनके हाथ से छूट चुकी थी।मैं उस भीड़ में खो चुकी थी, रोना भी शुरू कर दिया था तभी एक पुलिस वाले अंकल को देखा तो उनको बताया मेरी आया जी भीड़ में खो गईं हैं कृपया उनको ढूंढ दें।

उस घटना के बाद से दिलीप कुमार का नाम मेरे दिल दिमाग़ पर हावी हो चुका था। पहली बार किसी हीरो का ऐसा रूतबा देखा था। मैं उनकी तभी से फैन हो चुकी थी।

घर में रविवार के दिन जब पापा टेप रिकॉर्डर पर मुगले आजम की कैसेट लगाते, तो सलीम के सारे डायलॉग साथ-साथ बोलती थी। मुगले आज़म में फतेहपुर सीकरी का वो दृश्य जिसमें अकबर बादशाह सलीम चिश्ती की दरगाह पर औलाद की दुआ करते हैं, वही दुआ दिलीप कुमार ने भी अपनी औलाद के लिए की।

उस दौर के वो लोग जो दरगाह पर रहा करते थे उनका कहना था कि दरगाह के पीछे का वो दरवाजा जिसके पायदान के नीचे एक छोटी सी गुप्त सुरंग, जिसमें सिर्फ हाथ ही जा सकता है, उसमें हाथ डाल कर सिर्फ औलाद के लिए ही दुआ की जाती है। मान्यता ये है की जिसकी दुआ कुबूल होनी होती है उसके हाथ में गुलाब का फूल आ जाता है। बताया जाता है कि दिलीप कुमार जी ने ऐसा कई बार किया लेकिन खाली हाथ ही रहा।वो कहा करते थे कि दुआ की बरकत से उनको औलाद की कमी महसूस नही होती। वो और सायरा बानो एक दूसरे के साथ बहुत खुश हैं।

बचपन से ही मैं उनकी सभी फिल्में देखती थी, जिसमे से विधाता को बहुत पसंद करती थी। दिल में एक ख्वाहिश थी जिंदगी में एक बार उनसे मिलूं, रूबरू देखूँ। उन्ही दिनों बुआ की शादी के लिए जो रिश्ता आया, पता चला कि वो दिलीप कुमार के करीबी रिश्तेदार हैं।हो सकता है वो लोग भी शादी में आएं,ये जानकर मेरी खुशी का ठिकाना ही भी रहा।मुझे लगा कि बचपन से जो ख्वाहिश थी वो अब पूरी होगी, लेकिन उनका शादी में आना नही हुआ।

एक बार मौसी के यहां कुर्ला मुंबई में गई हुई थी। उनके यहां एक शादी का निमंत्रण आया हुआ था। बताया गया था कि उस शादी में साहेब और बाजी भी आ रहे हैं, सबकी जुबां पर यही बात थी। वहां के लोग दिलीप कुमार जी को साहेब और सायरा बानो को बाजी ही बोलते हैं।

मौसी के साथ मैं भी उस शादी में गई। बाजी यानि सायरा बानो को देखा, तो देखती ही रह गई, जितनी ज़्यादा वो फिल्मों में खूबसूरत दिखती थीं उससे तो बहुत ज़्यादा सामने से दिख रहीं थीं। बिना किसी मेकअप के। बहुत ही सादगी के साथ वो मिल रहीं थीं।

लेकिन अफसोस दिलीप कुमार जी का तब भी आना नही हुआ इस शादी में।अब तो ये अफसोस हमेशा के लिए ही हो गया रूबरू मिलने का।

दिलीप कुमार कहीं नहीं गए, वो हमेशा रहेंगे हर युग में रहेंगे। वो कोहिनूर थे कोहिनूर ही रहेंगे। उनकी जगह कोई भी नहीं ले सकता।

hillviewsamachar@gmail.com

हिलव्यू समाचार

02

जयपुर ≫ बुधवार, 14 जुलाई, 2021

संपादकीय

नई करवट लेती दलित राजनीतिः दलित समाज ने जैसे कांग्रेस को छोड़ दिया, उसी की पुनरावृत्ति वह आज अस्मिता की राजनीति करने वाले दलों के साथ कर रहा है

बीते दिनों बिहार और उत्तर प्रदेश में घटित घटनाएं दलित राजनीतिक विमर्श में नए रुझान का संकेत करती हैं। इसमें एक प्रश्न यही उभरा है कि क्या अब दलितों को अस्मिता से अधिक आकांक्षाएं आकर्षित कर रही हैं? बिहार में दलित राजनीति की अगुआ मानी जाने वाली लोक जनशक्ति पार्टी में आंतरिक उठापटक चल रही है। वहीं उत्तर प्रदेश में रामअचल राजभर और लालजी वर्मा जैसे कई कई दलित नेताओं को मायावती ने पार्टी से निकाल दिया। यह महज एक इत्तेफाक है या इसके पीछे कोई 'अंडर करेंट' है? विगत 74 वर्षों में बाबू जगजीवनराम को छोड़ कोई दलित नेता राष्ट्रीय स्तर पर पनप नहीं पाया। उत्तर प्रदेश में मायावती और बिहार में रामविलास पासवान को आंशिक सफलता ही मिली। वैसे मायावती ने 2007 में प्रभावी 'सोशल इंजीनियरिंग' द्वारा समावेशी राजनीति की ओर कदम बढ़ाया और सभी वर्गों के वोट से प्रदेश में सरकार बनाई। हालांकि अपने प्रयोग को वह बहुत आगे नहीं ले जा सकीं और राष्ट्रीय राजनीति की राह में भटक गईं। वहीं पासवान स्वयं निर्वाचित होते रहे, पर बिहार में दलितों को लामबंद नहीं कर सके और पासी-समाज तक ही सीमित होकर रह गए। ऐसे में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि कोई दलित नेता राष्ट्रीय राजनीति तो दूर अपने प्रदेश में ही पूरी तरह स्थापित क्यों नहीं हो पाता? इसके तीन कारण तो बिल्कुल स्पष्ट हैं।

दलित समाज बेहद विभक्त है: पहला यही कि दलित समाज बेहद विभक्त है। उसकी आंतरिक सामाजिक संरचना में उतना ही भेदभाव है जितना बाह्य समाज में। जाटव और पासी, पासी और वाल्मीकि, वाल्मीकि और डोम और ऐसे ही अनेक दलित समुदाय एक मंच पर नहीं आते। अधिकांश विमर्श दलित बनाम गैर-दलित पर ही केंद्रित रहता है। विश्लेषक 'दलित राजनीति' की बात करते हैं, लेकिन उनके विश्लेषण गलत हो जाते हैं, क्योंकि वे दलितों को समरूप समाज मानकर चलते हैं। कोई भी दलित या गैर-दलित नेता दलितों की आंतरिक सामाजिक संरचना की पदसोपानीयता और विसंगतियों को नहीं उठाता। जब तक ऐसा नहीं होगा, तब तक 'दलित राजनीति' केवल सहयोगी राजनीति के रुप में ही क्रियाशील हो पाएगी, 'स्वायत्त-राजनीति' के रूप में नहीं।

दलित समाज लामबंद नहीं: दूसरा कारण यही है कि दलित समाज की आंतरिकपदसोपानीयता उसे समरूप समाज के रूप में लामबंद नहीं होने देती। यदि उप्र में जाटव केंद्रित दलित राजनीति है तो बिहार में पासी या मुसहर केंद्रित। पंजाब में सर्वाधिक 32 फीसद दलित हैं, लेकिन कोई दलित राजनीति की बात नहीं करता? कांशीराम तो होशियारपुर, पंजाब से थे। फिर भी वह वहां दलितों में पैठ नहीं बना सके? कारण स्पष्ट है कि वहां दलित समाज वाल्मिकी, रविदासी, कबीरपंथी, मजहबी सिख आदि में बंटे हुए हैं, जिनमें रोटी-बेटी का संबंध भी नहीं होता। क्या ऐसे विभक्त समाज में दलितों को लामबंद कर 'अस्मिता' आधारित राजनीति हो सकती है? क्या इसीलिए मायावती को पंजाब में आगामी विधानसभा चुनाव के लिए अकाली दल के साथ गठबंधन करना पड़ा? संभवत- इसी कारण भाजपा ने तुरुप का पत्ता चला है। भाजपा ने राज्य में दलित मुख्यमंत्री बनाने की घोषणा की है। यदि दलितों की राजनीतिक लामबंदी और सशक्तीकरण से उनके आंतरिक सामाजिक भेदभाव को खत्म किया जा सके तो यह घाटे का सौदा नहीं होगा।

दलित राजनीति स्वभाव से ही अस्मिता को ही तरजीह देता है: तीसरा पहलू यही है कि दलित राजनीति स्वभाव से ही अस्मिता अर्थात 'पहचान की राजनीति' को स्वीकार करती है। किसी दल पर जब यह ठप्पा लग जाता है कि वह दलित अस्मिता को ही तरजीह देता है तो समाज के अन्य वर्ग उससे कटने लगते हैं। इससे समावेशी राजनीति की संभावना खत्म हो जाती है। मायावती ने यह मिथक 2007 में उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनावों में तोड़ा जब उन्होंने सोशल इंजीनियरिंग द्वारा 'सैंडविच' गठबंधन बनाया। इसमें उन्हें सैंडविच के दो छोर की तरह न केवल ब्राह्मणों और दलितों का समर्थन मिला, वरन अंदरूनी फ्रिंलग के रूप में समाज के अन्य वर्गों का भी समर्थन मिला। हार्वर्ड विश्वविद्यालय में व्याख्यान के दौरान मायावती की सोशल इंजीनियरिंग के प्रति मुझे श्रोताओं में काफी उत्सुकता, आशा और रोमांच दिखा। उनमें मायावती को भावी राष्ट्रीय नेता के रूप में देखने की इच्छा थी, लेकिन मायावती अपनी सोशल इंजीनियर्रंग को आगे न ले जा सकीं। वह अस्मिता की राजनीति और समावेशी राजनीति में समन्वय न कर सकीं। दलितों को लगा कि उनकी 'अपनी' सरकार बनने के बावजूद वे सत्ता से बाहर हो गए, क्योंकि मायावती ने ब्राह्मणों, मुस्लिमों आदि को सत्ता में ज्यादा भागीदारी दे दी थी। वहीं से दलितों का 'अस्मिता' से मोहभंग हो गया और उन्हें अपनी आकांक्षाएं अधिक महत्वपूर्ण लगने लगीं। पिछले एक-डेढ़ दशक में यह प्रवृत्ति बढ़ी है और आज दलित समाज अस्मिता से ऊब चुका है। उसे अब अपनी आकांक्षाएं पूरी करनी हैं।

दलित समाज और राजनीति में कशमकशः इससे भारतीय राजनीति में नई संभावनाएं बनी हैं। दलित समाज ने अतीत में जैसे कांग्रेस को छोड़ा, उसी की पुनरावृत्ति वह आज दलित पार्टियों के साथ कर रहा है। कांग्रेस में दलितों की न कोई पहचान थी, न सत्ता में भागीदारी, न ही नेतृत्व में कोई प्रतिनिधित्व। दलित पार्टियों में उन्हें पहचान तो मिली, पर ये पार्टियां सत्ता से कोसों दूर हैं। यानी वे दलित आकांक्षाओं की पूर्ति करने में असमर्थ हैं। इसी कारण दलित समाज और राजनीति में कशमकश है जिससे आज का दलित सत्ता की कुंजी रखने वाले दल भाजपा की ओर आकृष्ट हो रहा है। देश में एक 'भाजपा सिस्टम' उभर रहा है जो सत्ता पर वैसा ही एकाधिकार चाहता है जैसा कभी कांग्रेस का था।

भाजपा मजबूत होगी: अभी तक दलों की सोच थी कि दलितों का सामाजिक सशक्तीकरण होगा तो उनका राजनीतिक सशक्तीकरण स्वत- हो जाएगा। भाजपा ने इस सोच को उलट दिया है। वह दलितों के राजनीतिक सशक्तीकरण से ही उनका सामाजिक सशक्तीकरण करना चाहती है। इससे न केवल उनका राजनीतिक सामाजिक सशक्तीकरण होगा, वरन भाजपा मजबूत होगी और हिंदू समाज के विभाजन की प्रवृत्ति भी घटेगी। इस प्रयोग से आज उप्र के लगभग सभी दलित विधायक और दलित सांसद भाजपा के हैं, जो प्रमाणित करता है कि दलित राजनीति करवट ले चुकी है।

दिलीप कुमार की दीवानगी...

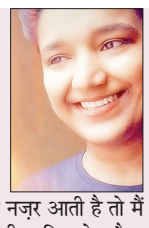

सुमनपाल हिंदुस्तानी

फेसबुक पर मैं जिन चन्द इंसानों से प्रभावित हूँ उनमें एक किशोरवय लड़की सुमनपाल हिंदुस्तानी है। अपनी अलग सोच और उपलब्धियों से सुमन ने अपनी अलग जगह बनाई है । फेसबुक पर यदि दिलीप कुमार की कोई तस्वीर नज़र आती है तो मैं समझ जाता हूँ यह सुमन ही होंगी और वह मेरा अनुमान सही साबित होता है ।

आप उनकी टाइमलाइन पर जाकर देख सकते हैं मेरी तरह आप भी उनके प्रशंसक बन जायेंगे।

आप जीवन में बहुत उन्नति करें और अपना अलग ही स्थान बनायें, मेरी हार्दिक शुभकामनायें और दिल से दुआएँ हैं सुमन।

■ रिज़वान ऐजाज़ी

लघु कथा

'जैसे को तैसा'

ऑफिस से लौटते समय सब्जी लेने रमेश अपनी वही परिचित दुकान पर पहुँचा। पहले से ही किसी अन्य ग्राहक से मोल भाव करते देख रमेश एक तरफ खड़ा हो गया। सब्जीवाला ग्राहक से पैसे तनिक भी कम करने को राजी नही था। काफी ही हुज्जत के बाद ग्राहक को उसी भाव में सब्जी लेनी पड़ी। उसके जाने के बाद रमेश भी जब बिना सब्जी लिये जाने लगा तो सब्जीवाले ने पूछा कि 'आज आप बिना सब्जी लिये क्यों जा रहे हो मेरी दुकान से।' रमेश ने कहा 'भाई लगता है आज तुम दाम तो कम करोगे नही इसिलिये किसी और दुकान पर सब्जियाँ देखता हूँ।'

रमेश की बात सुन सब्जीवाला हँस कर बोला 'दरअसल अभी जो महाशय सब्जी लेकर गये है इनकी यहीं पास में कपडे की दुकान है। मैं जब इनकी दुकान पर कपडा लेने जाता हूँ तो ये कितनी भी जिद कर लो एक पैसा कम नही करते तो आज ये मेरी दुकान पर सब्जी लेने आये है तो मैं भी कीमत कम क्यों करूँ। इनकी दुकान पे मैं ग्राहक होता हूँ तो आज मेरी दुकान पर ये महाशय ग्राहक थे। जस को तस 'बाबूजी लेनदेन बराबर' रमेश निरुत्तर था ।

■ अन्जना मनोज गर्ग

पेज एक का शेष...

ओ दूर के ....

अपने अभिनय ही नहीं, अपने दौर की दो अभिनेत्रियों - कामिनी कौशल और मधुबाला के साथ अपने असफल प्रेम की वजह से भी दिलीप साहब सदा चर्चा में रहे। खासकर मधुबाला के साथ उनकी प्रेम कहानी का शुमार राज कपूर-नरगिस और देव आनंद-सुरैया, गुरुदत्त-वहीदा रहमान की प्रेम कहानियों के साथ भारतीय सिनेमा की सबसे चर्चित प्रेम कहानियों में किया जाता है। इस असफल प्रेम के बाद वर्ष 1966 में 44-वर्षीय दिलीप कुमार ने उस दौर की ग्लैमरस अभिनेत्री 22 साल की सायरा बानो से विवाह कर लिया था। सायरा जी के साथ उनका 54 साल लंबा साहचर्य फिल्मी दुनिया का सबसे सफल दांपत्य माना जाता है। दिलीप साहब के जीवन के कुछ आखिरी सालों में जब वे शारिरिक तौर पर असमर्थ और दिमागी तौर पर अपंग हो चुके थे, सायरा जी ने हमसाया बनकर जिस तरह उनकी देखभाल की उसे हमेशा याद किया जाएगा।

'एक इतिहास...

दिलीप कुमार और सायरा बानो की शादी 1966 में हुई थी। सायरा दिलीप कुमार से 22 साल छोटी हैं। हालांकि शादी के 50 साल के बाद भी दोनों की कोई संतान नहीं थी। इस कारण 50 साल से बेऔलाद हैं दिलीप कुमार। दरअसल कम ही लोगों को पता है कि उनके पिता न बनने की असली वजह क्या है। दिलीप कुमार ने इस बात का खुलासा अपनी आत्मकथा 'द सबस्टांस एंड द शैडो' में किया था। इस बुक में दिलीप कुमार ने कहा है, 'सच्चाई यह है कि 1972 में सायरा पहली बार प्रेग्नेंट हुईं थी 8 महीने की प्रेग्नेंसी में सायरा को ब्लड प्रेशर की शिकायत हुई। इस दौरान पूरी तरह से विकसित हो चुके भ्रूण को बचाने के लिए सर्जरी करना संभव नहीं था। आखिरकार दम घुटने से बच्चे की मौत हो गई। उनके मुताबिक इस घटना के बाद सायरा कभी प्रेग्नेंट नहीं हो सकीं। हालांकि हमें बाद में पता चला कि सायरा की कोख में बेटा था। दिलीप कुमार को मिले पुरस्कार की लिस्ट बड़ी लंबी है। इतनी फ़िल्मों के लिए फ़िल्मफ़ेयर सर्वश्रेष्ठ अभिनेता पुरस्कार से सम्मानित थे दिलीप कुमार । शक्ति, राम और श्याम, लीडर, कोहिनूर, नया दौर, देवदास, आज़ाद, और दाग। लगभग 2 दशक तक सिनेमा में राज करने के बाद 70 के दशक में जब अमिताभ बच्चन और राजेश खन्ना जैसे कलाकारो की एंट्री हिन्दी सिनेमा में हुई, तो इन्हे फिल्मों के ऑफर मिलना कम हो गए थे। इस समय दिलीप जी की जो फिल्में आई वो भी असफल रही। इसके बाद दिलीप जी ने 5 सालों तक का लम्बा ब्रेक ले लिया और 1981 में मल्टी स्टारर 'क्रांति' फिल्म से धमाकेदार वापसी की। इसके बाद से इन्होने अपनी उम्र के हिसाब से रोल का चुनाव किया, वे परिवार के बड़े या पुलिस वाले रोल लेने लगे। दिलीप जी की आखिरी बड़ी हिट फिल्म रही फिल्म 'सौदागर'। दिलीप जी आखिरी बार 1998 में फिल्म 'किला' में नजर आये और इसके बाद इन्होने अभिनेता के रूप में फिल्म इंडस्ट्री से सन्यास ले लिया। और आज ज़िंदगी से भी सन्यास लेकर अनंत की डगर पर निकल गए।

शहंशाह-ए-जज़्बात दिलीप कुमार पर विशेष

फ़ैसल रहमानी

हमारे बाद इस महफ़िल में
अफ़साने बयां होंगे,
बहारें हमको ढूंढेंगी न जाने
हम कहां होंगे।

दिलीप साहब के इंतेक़ाल के दिन सुबह-सुबह फ़ोन के घंटी की आवाज़ से मेरी नींद खुली। मैंने सलाम किया और उनकी ख़ैरियत पूछा। अमूमन वो इतनी सुबह फ़ोन नहीं करते हैं। इसलिए एक अनजाने से अंदेशे के साथ पूछा कि ख़ैरियत तो है ना? उन्होंने कहा कि वो तो ठीक हैं लेकिन एक बुरी ख़बर है। साहब नहीं रहे। उधर से रुंधी हुई आवाज़ में असफ़र भाई ने कहा। डॉ. असफ़र सईद भी मेरी तरह दिलीप कुमार साहब के बहुत बड़े फ़ैन हैं। इस मनहूस ख़बर से मुझे ज़बरदस्त धक्का लगा। ऐसा लग रहा था मानो मेरा व्यक्तिगत नुक़सान हुआ हो।

क़याम-गाह न कोई न
कोई घर मेरा,
अज़ल से ता-ब-अबद
सिर्फ़ इक सफ़र मेरा।

शहंशाह-ए-अदाकारी दिलीप कुमार का 98 साल की उम्र में इंतेक़ाल हो गया। इसी मनहूस ख़बर से आज मेरी नींद खुली। आंख खुलते ही मैंने ख़बर की तस्दीक़ करने के लिए टीवी खोल लिया। हर ख़बरिया चैनल पर उन्हीं का बखान। कई बार उनकी मौत की झूठी ख़बरें आती रहीं लेकिन आख़िरकार 98 साल की उम्र में आज वो इस जहान-ए-फ़ानी से कूच कर ही गए।

आज से 98 साल पहले आलम-ए-फ़ानी में उस शख़्स की पैदाईश हुई जिसको दुनिया बाद में शख़्स की शक्ल में न जान कर शख़्सियत के तौर पर पहचानती है। कहते हैं कि शख़्स मरते हैं शख़्सियतें नहीं मरा करती।

भारतीय उपमहाद्वीप ने सिर्फ़ एक कलाकार नहीं, बल्कि अमन और मुहब्बत की अहम कड़ी भी खो दी। जिस तरह से उर्दू अदब की पासदारी यूसुफ़ खान उर्फ़ दिलीप कुमार ने की वो उर्दू वालों के लिए मिसाल है। वे पहले अदाकार हैं जिन्होंने यह साबित किया कि बग़ैर शारीरिक हावभाव और बड़े-बड़े डायलॉग के चेहरे की भंगिमाओं, आंखों और ख़ामोशियों से भी अभिनय किया जा सकता है।

उनके इंतेक़ाल के साथ ही पचास-साठ के सालों की दिलीप कुमार-देवानंद-राजकपूर की मशहूर तिकड़ी का आख़िरी सितारा भी टूट गया।

दिलीप कुमार का नाम ज़ुबां पर आते ही एक विलक्षण प्रतिभाशाली मूरत सामने आती है। उन्हें हिंदी सिनेमा के पहले ट्रेजेडी किंग और शहंशाह-ए-जज़्बात कहा गया। तमाम प्रोड्यूसर मुंहमांगी रक़म पर उनको साईन करने के लिए आगे-पीछे घूमते थे। मगर दिलीप साहब उसी को हां बोलते जिनका जिगर बड़ा हो और साथ ही ज्ञानी-ध्यानी हो।

दिलीप साहब परफ़ेक्शन में यक़ीन करते थे। कई बार रीटेक पर रीटेक देते रहे। मगर नतीजा, बेशकीमती रॉ-स्टॉक की बरबादी। इसलिए उनके साथ फ़िल्म बहुत महंगी बैठती थी। एक बार उन्होंने छत्तीस रीटेक दिए। लेकिन रीव्यू किया गया तो बोले - मियां, पहले वाला शॉट ही बेहतर था। बड़े दिल-गुर्दे वाले प्रोडयूसर के लिए भी दिलीप साहब को रिपीट करना मुश्किल होता था। लेकिन बीआर चोपड़ा बड़े दिल के थे। उन्होंने 'नया दौर' के बाद 'दास्तान' और फिर 'मज़दूर' में उन्हें कास्ट किया। अगरचे बीच में वक़्फ़ा लंबा रहा। रमेश सिप्पी और सुभाष घई उनकी फ़िल्में देख-देख जवान हुए। रमेश ने अपनी ख़्वाहीश 'शक्ति' में पूरी की। इसमें अमिताभ बच्चन भी थे। दो बड़े आर्टिस्टों की आमने-सामने की परफ़ॉर्मेंस क्या मायने रखती है, 'शक्ति' आज भी इसकी एक मिसाल है।

शानदार दिल वाले सुभाष घई तो दिलीप साहब के इतने बड़े मुरीद थे कि उन्होंने उनके साथ विधाता, कर्मा और सौदागर तीन फिल्में बनाईं थीं। 'विधाता' में संजीव कुमार को दिलीप के सामने खड़ा किया तो 'कर्मा' में अनिल कपूर और जैकी श्रॉफ़ थे। नसीरूद्दीन शाह को दिलीप के कहने पर लाया गया। दरअसल, कुछ दिन पहले नसीर ने इंटरव्यू दिया था कि वो दिलीप को बड़ा आर्टिस्ट नहीं मानते। मगर इस फ़िल्म के बाद उन्होंने बयान बदल दिया। इसी में दारा सिंह की भी उनके संग काम करने की चाहत पूरी हुई। 'सौदागर' में दिलीप साहब का सामना उन्होंने फ़ुटबॉल साईज़ इंगो वाले जानी राजकुमार से कराया गया। राजकुमार ने शुरूआती दौर में उनके संग 'पैग़ाम' की थी। राजकुमार ने अपने से बड़ा आर्टिस्ट सिर्फ़ दिलीप साहब को ही माना।

दिलीप कुमार के झोले में हिट फ़िल्में कम हैं। लेकिन इस बुनियाद पर उन्हें ख़ारिज नहीं किया गया। हर ऐक्टर के लिए उन्हें परफ़ॉर्म करते हुए देखना और उनके साथ काम करना एक सुखद और लाईफ़टाईम उपलब्धि रही। ज़्यादातर क्रिटिक भी इस पर एक मत हैं कि उनसे बड़ा कोई ऐक्टर भारतीय स्क्रीन पर नहीं आया। बावजूद इसके कि उन्होंने किसी स्कूल में ऐक्टिंग नहीं सीखी-पढ़ी, लेकिन ख़ुद में ऐक्टिंग की यूनिवर्सिटी हैं। अमिताभ बच्चन, धर्मेंद्र सरीखे अदाकार उन्हें सर्वश्रेष्ठ ऐक्टर बताते हैं। सत्यजीत रे ने कहा था - दिलीप कुमार बेमिसाल और सलीक़ेदार ऐक्टर हैं। नामवर फ़िल्म क्रीटिक और लेखक अली पीटर जॉन ने एक बार कहा था कि वो सैकड़ों ऐक्टर से मिल चुके हैं। किसी का असर दिन भर रहा और कोई महीने भर दिमाग़ को डेंट करता रहा। मगर दिलीप कुमार से मिला तो उनका प्रभाव बरसों तक दिमाग़ में घुसा रहा। वो आसानी से भुलाये जाने वाले अदाकार नहीं हैं।

विधाता के रिव्यू में कई गॉसिप टाइप समीक्षकों ने लिखा कि संजीव कुमार ने दिलीप कुमार को धो दिया। अली पीटर जॉन ने इस पर क़िस्सा बताया। एक सी-ग्रेड टाइप समीक्षक ने जब संजीव कुमार के सामने दिलीप कुमार से तुलना करते हुए उन्हें दिलीप साहब से ऊपर का अदाकार बताया तो संजीव आपा खो बैठे और उस समीक्षक को ज़ोरदार थप्पड़ मार दिया। उन्होंने कहा कि मेरे जैसे कई संजीव कुमार आते-जाते रहेंगे, लेकिन दिलीप साहब जिस टॉप पोज़िशन पर हैं वहां से उन्हें कभी कोई नहीं हटा सकता।

दिलीप कुमार को रिकॉर्ड आठ बार बेस्ट ऐक्टर का फ़िल्मफ़ेयर अवार्ड मिला। उन्हें दाग़, आज़ाद, देवदास, नया दौर, कोहिनूर, लीडर, राम और श्याम तथा शक्ति के लिए इस एज़ाज़ से नवाज़ा गया। वो बेस्ट ऐक्टर के लिए 19 बार नॉमिनेट हुए। उन्हें 1993 में लाईफ़टाईम अचीवमेंट अवार्ड देकर फ़िल्मफ़ेयर ने ख़ुद को सम्मानित किया। भारत सरकार ने 1991 में पद्म भूषण दिया। वह राज्यसभा के लिए भी नामांकित हुए थे।

फ़र्राटेदार इंग्लिश और उर्दू बोलने की वजह क्या काम मिल गया। जब पिता से नाराज़गी कम हुई तो उनके घर की याद सताने लगी। जमा पूंजी 5 हज़ार रूपए लेकर वापस अपने घर मुंबई आ गए। उनके मकान मालिक ने उनकी मुलाकात देविका रानी से कराई। यहां भी उनकी शानदार अंग्रेज़ी और उर्दू काम आई। क़ाबिलियत देखते हुए देविका रानी ने कंपनी में उन्हें नौकरी दे दी। शुरुआत में इस यूसुफ़ साहब स्टोरी लिखने और स्क्रिप्ट सुधारने में मदद करते थे। इसी दौरान अशोक कुमार की नज़र दिलीप कुमार पर पड़ी। अशोक कुमार उनकी क़ाबिलियत और खूबसूरती से बहुत प्रभावित हुए। अशोक कुमार और उनके जीजा शशिधर मुखर्जी बॉम्बे टॉकीज के मज़बूत स्तंभ थे। कंपनी के मालिक हिमांशु राय और देविका रानी उनकी बड़ी इज़्ज़त करते थे। एक दिन अशोक कुमार ने अपने जीजा शशिधर से यूसुफ़ का ज़िक्र किया और बताया कि इस लड़के की भाषा, बोलने का अंदाज़ और रौबदार चेहरा लाजवाब है। उन्होंने कंपनी के मालिक हिमांशु राय को सलाह दी कि यूसुफ़ को पर्दे के पीछे से निकाल कर आगे लाएं। अशोक कुमार ने यह बात यूसुफ़ को बताई तो वह हैरत में पड़ गए। अशोक कुमार ने यूसुफ़ को अदाकारी के बहुत सारी टिप्स दी। अशोक कुमार के नाम से प्रभावित होकर उन्होंने अपना नाम युसूफ़ ख़ान से बदलकर दिलीप कुमार कर दिया था।

दिलीप कुमार की शादी अभिनेत्री सायरा बानो से 1966 में हुई थी। शादी के वक्त दिलीप कुमार की उम्र 44 साल और सायरा बानो की 22 साल की थी। 1980 में उन्होंने आसमां से दूसरी शादी भी की थी। लेकिन बाद में उनके भी तलाक़ हो गया।

1997 में पाकिस्तान सरकार ने उनके भारत-पाकिस्तान की आवाम को क़रीब लाने और अमन की पहल करने के लिए देश के सबसे बड़े नागरिक सम्मान निशान-ए-इम्तियाज़ अवार्ड से नवाज़ा। इस पर शिवसेना और उसकी सोच की समकक्ष पार्टियों ने बड़ा हो-हल्ला मचाया था कि कारगिल युद्ध के मद्देनज़र दिलीप कुमार को यह अवार्ड लौटा देना चाहिए। इस पर दिलीप कुमार ने कहा कि ये अवार्ड उन्हें अमन की सेवा के लिए मिला है, युद्ध से इसका कोई ताल्लुक़ नहीं है। उन दिनों केंद्र में बीजेपी की सरकार थी। कई मंत्री खुश नहीं थे। मगर तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने दिलीप कुमार का समर्थन करते हुए कहा था कि ये अवार्ड उनके अचीवमेंट के लिए है।

उनकी तमाम फ़िल्में ऐसी हैं और भारतीय सिनेमा में उनके योगदान के लिए उन्हें 'भारत रत्न' तो दिया ही जा सकता था। जब पाकिस्तान उन्हें अपना सर्वोच्च सम्मान निशान-ए-पाकिस्तान दे सकता है, तो भारत क्यों नहीं उन्हें भारत रत्न दे सकता है?

सायरा बानो के जिक्र के बिना मेरी यह ख़िराज-ए-अक़ीदत अधूरी रहेगी। सायरा बानो साहिबा की जितनी तारीफ़ की जाए कम है। उन्होंने दिलीप साहब का पूरा ख़्याल रखा, आख़िरी वक्त तक साथ रहीं। उन्हें नारीवादी व एक परंपरागत भारतीय महिला ही कहेंगे लेकिन बॉलीवुड में तो लोग परंपरा भी नहीं निभाते हैं। आये दिन अस्पताल ले जाने से लेकर प्यार की जो थेरेपी वो देती थीं, दिलीप साहब की लंबी उम्र में सायरा बानो का विशेष योगदान है।

हिंदुस्तान की जान दिलीप साहब हमेशा हमारी यादों में ज़िंदा रहेंगे आप जैसा ना कोई था आप जैसा ना कोई होगा। ये कफ़न, ये जनाज़े, ये क़ब्र, सिर्फ़ बातें हैं मेरे दोस्त। दरअसल इंसान तब मर जाता है जब उसे याद करने वाला कोई नहीं रहता। लेकिन, दिलीप कुमार दुनिया भर के लोगों के दिलों में हमेशा ज़िदा रहेंगे।

दिलीप कुमार को सांस लेने में तकलीफ़ होने के चलते मुंबई के हिंदुजा अस्पताल में भर्ती कराया गया था जहां उनकी इस तकलीफ़ के चलते, 98 साल की उम्र में 7 जुलाई 2021 की सुबह निधन हो गया।

ट्रेजेडी किंग दिलीप कुमार साहब अब हमारे बीच नहीं रहे। भले ही वो फ़िल्मों में सक्रिय नहीं थे लेकिन अभिनय की दुनिया के लिए एक नज़ीर के तौर देखे जाते थे। अपने अभिनय के अलावा, वह अपने अच्छे लुक्स, गहरी आवाज़ और बेहतरीन लहजे के लिए जाने जाते थे।

दिलीप कुमार को मुंबई के जुहू क़ब्रिस्तान में राजकीय सम्मान के साथ सुपुर्द-ए-ख़ाक किया गया। सायरा बानो ने क़ब्रिस्तान जाकर आख़िरी सलाम किया।

अलविदा... यूसुफ़ साहब... अलविदा...
अल्लाह पाक आपको जन्नत-उल-फ़िरदौस में आला मुक़ाम अता फ़रमाए।

दिल में छुपा के प्यार का तूफ़ान ले चले....

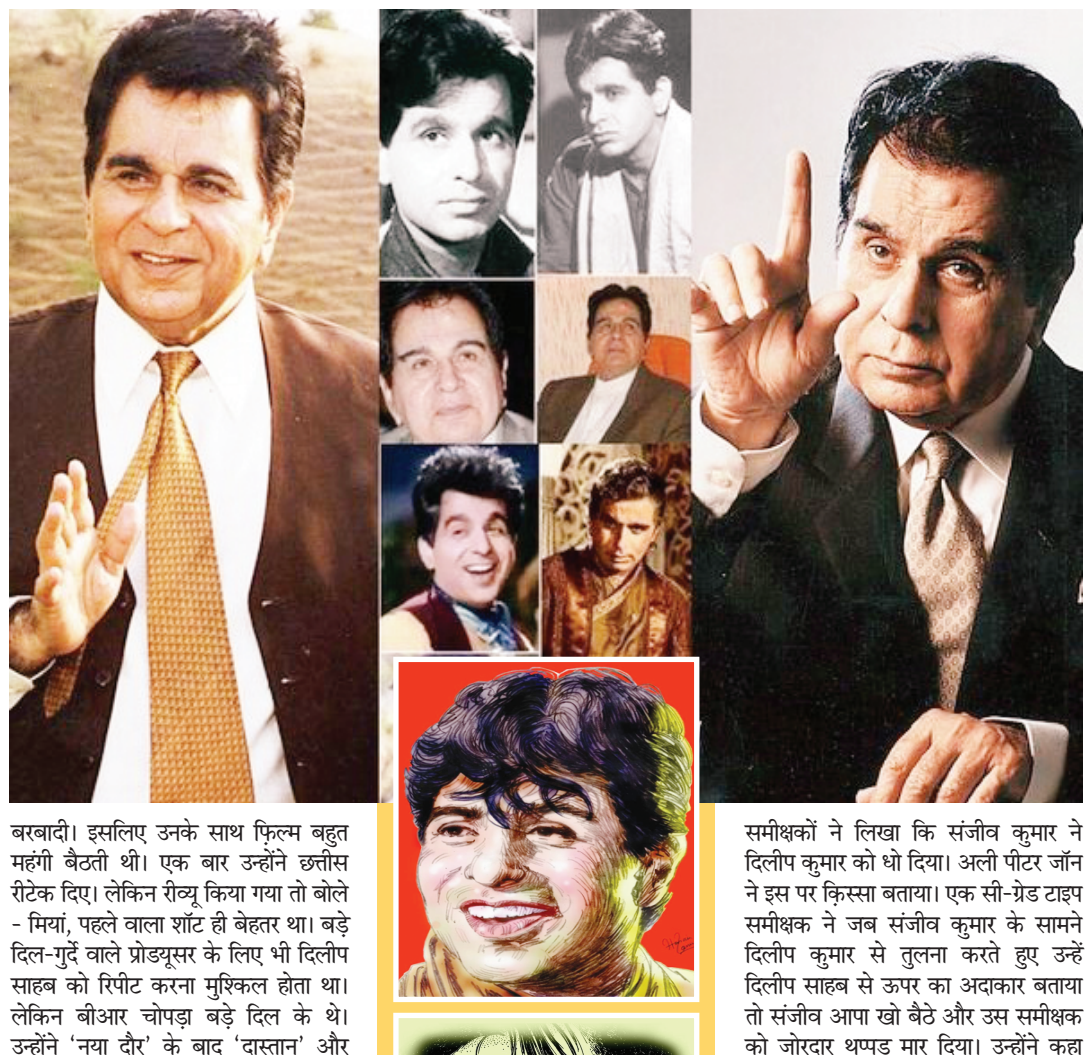

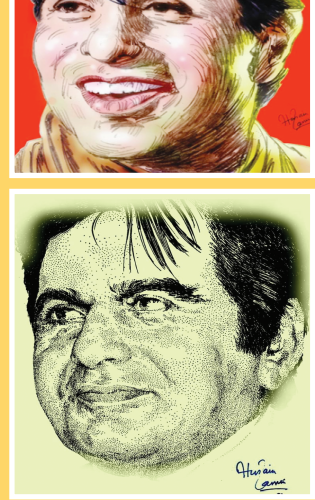

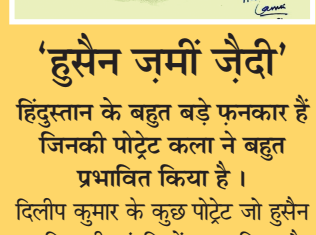

'हुसैन ज़मीं ज़ैदी'

हिंदुस्तान के बहुत बड़े फ़नकार हैं जिनकी पोट्रेट कला ने बहुत प्रभावित किया है ।

दिलीप कुमार के कुछ पोट्रेट जो हुसैन साहिब की अंगुलियों का करिश्मा है उनकी बारीकी और खूबसूरती आपकी नज़रों के सामने है ।

अनुपम वर्मा

सायरा के दिलीप

पढ़ते ही लोग मेरी ज़र्रा भर अक्ल को मानने से फ़ौरन इंकार हो जाएंगे या मुझे निहायती झूठी क़रार दे देंगे क्योंकि जब भी दिलीप सायरा के नाम ज़ेहन में आता है, ठीक तभी दिलीप कामिनी कौशल, दिलीप वैजयंतीमाला, दिलीप मधुबाला, दिलीप असमां के किस्से ज़ोरदार तरीके से घुसपैठ करने लगते हैं।

हां, बखूबी ख़बर है मुझे कि इन सबके साथ दिलीप कुमार का नाम जुड़ा और ज़ाहिर है कि हर ताड़ की नींव तिल होती है , तो फिर ये तो फिर भी फिल्मी दुनिया है जहां औरत और मर्द के जज़्बातों, रंगीनियों, खूबसूरतियों के हैरतअंगेज किस्से गढ़े जाते हैं ।

ऐसी ऐसी दिलफ़रेब कहानियाँ बुनी जाती हैं कि पत्थर की भी धड़कन तेज़ होने लगे।

ऐसे में सायरा बानो से ठीक बाइस बरस बड़े दिलीप कुमार कैसे उसी दुनिया मे रहकर मोहब्बत से अछूते रहते ?

उनकी गहरी संजीदा पुरअसरार आँखें, दुखी देवता सा तिलिस्म लिए रूहानी चेहरा और कलेजा चीर के जूतों सहित घुस जाने वाली उनकी डायलॉग डिलीवरी ने देश विदेश की लड़कियों को अपना दीवाना बना कर रख दिया था।

जो ऐसे चाहा जाये, ऐसे सराहा जाये, ऐसे ख्वाहिश बन जाए, उसे मोहब्बत ज्यादा देर तक नहीं बख्शाती , अपना आप मनवा कर ही रहती है।

और यही हुआ दिलीप कुमार के साथ मोहब्बत उनकी ज़िंदगी मे बार बार आयी, बार बार उन्होंने किसी को चाहा, और बदले में उन्हें भी चाहत ही मिली।

मगर मोहब्बत को बचाने का , मोहब्बत को पालने का, मोहब्बत की सूरत संवारने का, मोहब्बत का ब्याह महबूब से रचाने का हुनर सब में नहीं होता।

सायरा से पहले के रिश्ते किसी न किसी वजह से छोटे पड़ते गए और दिलीप अकेले होते गए।

सायरा ने बारह बरस की कच्ची सी उम्र में दिलीप को पहली दफ़ा देखा था, उस उम्र में जब हार्मोन्स भी पूरी तरह डेवलप नहीं होते, जब मोहब्बत लफ्ज़ के मायने तक समझ मे नहीं होते, उस उम्र में सायरा ने दिलीप कुमार की फ़िल्म 'आन' देखी और उनके नन्हे मन ने कह दिया कि उन्हें ये शख्स हमेशा के लिए चाहिये।

ये मोहब्बत नहीं थी, जुनून था, शिद्दत थी, तड़प थी जिसने बाइस साल छोटी सायरा बानो को, दिलीप कुमार का अतीत जानते हुए मजबूर कर दिया कि वो उनसे अपनी जज़्बात का इज़हार करें । चवालीस साल के दिलीप कुमार, इतनी मर्तबा रिश्ते और दिल टूटने से मायूसी में घुल चुके थे । वो ज़िन्दगी के स्याह सफेद को इस क़दर जी चुके थे कि कोई रंगीनी अब उन्हें असल नहीं लगती थी।

सायरा की दुबली पतली काया, नाज़ुक नैननक्श, पिघलते बताशे सा रंग और इस नाज़ुक मजस्समे से उठती उन्हें पाने की लौ से दिलीप घबरा उठे थे, उन्हें लगता था अभी एक शौक़ है इकतरफ़ा मोहब्बत का , जब ऊबेगी इस खेल से तो आईना मेरे बुढ़ापे में इज़ाफ़े कर देगा।

शुरुआती दौर में कई कोशिशों के दौरान भी दिलीप कुमार अपनी थकी पस्त हुई हथेली से ये शरारा छूने को तैयार न हुए मगर सायरा भी एक ही थीं अपने किस्म की , उन्होंने खुद को दिलीप जैसा संजीदा कर लिया, शोखियों को अदब घोल कर पिला दिया ।

और आख़िरकार, अपने जन्मदिन पर साड़ी में लिपटी सायरा, दिलीप की आंखों को कुछ पल के लिए खुद पर रोकने में कामयाब हो गईं, दिलीप की आंखों में हैरानगी थी, कि कैसे अचानक ये लड़की बड़ी सी दिखने लगी।

सायरा के इकतरफ़ा प्यार की धूनी में ये आहुति भी काफी थी। उन्होंने हार नहीं मानी।

आखिर कब तक, सच्चे खरे जज़्बों के बेझिझक इज़हार से खुद को बचा सकता है? दिलीप कुमार ने सायरा से निकाह कर लिया।

अपनी तमाम वफ़ा और शिद्दत के बदले सायरा ने दिलीप से निकाह के वक्त वादा ले लिया था कि वो दोबारा निकाह नहीं करेंगे, मगर निकाह के पंद्रह बरस बाद, शायद औलाद की आस में दिलीप कुमार असमा नूर की तरफ झुकते चले गए , ये झुकाव निकाह में बदला तो सायरा का मान टूटा , सायरा खुद भी टूटीं।

मगर नहीं टूटी तो वो थी मोहब्बत की हद।

दिलीप और असमा का निकाह दो बरस तक चला। या उससे ज्यादा भी चलता, तब भी सायरा का वो मान तो टूट ही चुका था कि उनके होते हुए, दिलीप किसी और की तरफ नहीं मुड़ेंगे, बचपन की मोहब्बत में खलल पड़ चुका था।

पर कौन कहता है मोहब्बत सिर्फ होने, हासिल करने, निभाने तक ही रहती है, सायरा ने बड़ी ही हिम्मत से चूर चूर होता अपना आप समेट कर खुद को तैयार किया दिलीप की वापसी के लिए। दिलीप की नामौजूदगी में सायरा को दिलीप के असमा की तरफ मुड़ने की वज़हात पर गौर फरमाने का मौका दे दिया था शायद।

वो अपने एक मिसकैरिज के बाद कभी माँ नहीं बन सकीं, और दिलीप बाप नहीं बन सके, वारिस की चाह में दिलीप के हाथों हुए अपराध को सायरा ने जिस जतन से साध लिया, असल मोहब्बत वहाँ से शुरू होती है।

आम मोहब्बतों से अलग, धोखा खाने और माफ़ कर देने की सरहद से परे, एक ऐसी मोहब्बत जिसमें महबूबा बीवी तो बनी मगर महबूब के बच्चे की माँ न बन पाने पर, उसने बाइस बरस बड़े महबूब को ही अपनी ममता का मरकज़ बना कर साबित कर दिया कि महबूबा जब माँ बनती है तो महबूब के पांवों में ममता ऐसी रस्सी की तरह लिपट जाती है कि महबूब कभी बेवफ़ा हो ही नहीं सकता।

भूली बिसरीं यादें...

कोई रिश्ता नहीं था लेकिन, हमारे छोटे से खानदान के चहेते थे दिलीप कुमार

हर परिवार के हर सदस्य का मिजा अलग होते हुए भी सभी सिर्फ दिलीप कुमार के फैन रहे हैं। बात करीब तीस साल पहले की है ,अजमेर शहर के किसी सिनेमाघर में दिलीप साहब की कोई फिल्म लगी हो और सबसे छोटे चचा अख्तर नहीं देख पायें ऐसा मौका शायद ही कभी आया हो। चचा अख्तर अपने दोस्त अता के साथ फिल्म देखने जाया करते और अधिकतर नाईट शो ही देखा करते। दिलीप साहब की अंदाज, देवदास, आज़ाद, कोहीनूर फिल्में उन्हें बहुत पसंद रही हैं और आज भी दिलीप कुमार की फिल्मों की बातें करते रहते हैं। दिलीप कुमार की कोई फिल्म उन दिनों टेलीविजन पर भी आती तो बड़ी अम्मी यानि ताई पूरे खानदान को कहलातीं कि आज दिलीप साहब की फिल्म आ रही है, सब लोग देखने आना। उन दिनों सिर्फ बड़ी अम्मी के घर ही टेलीविजन था लिहाजा परिवार के सभी लोग बड़े अब्बा-अम्मी के सोलह खंबा वाले घर में पहुंच जाते। वहीं चाय नाश्ता चलता रहता और फिल्म में दिलीप कुमार की एक एक अदा पर बड़ी अम्मी वाह वाह कह उठतीं। बड़े अब्बा दिलीप कुमार को देखकर मुस्कुराते रहते। उनके बेटे और हमारे भाई जावेद अपने बालों का हेयर स्टाईल दिलीप कुमार की तरह ही रखा करते और पेंट शर्ट भी दिलीप साहब की तरह ही दर्जी से सिलवाते। बड़ी अम्मी और बड़े अब्बा भाई जावेद को कभी अकेले फिल्म देखने नहीं भेजते थे लेकिन जब दिलीप कुमार की फिल्म लगती तो भाई जावेद को मेरे साथ फिल्म देखने की इजाजत मिल जाया करती। एक बार भाई जावेद मुझे दिलीप साहब की लीडर फिल्म दिखाने श्री टॉकिज ले गए। मुझे फिल्म पसंद नहीं आई लेकिन रास्ते भर भाई जावेद फिल्म की तारीफ करते रहे और मैं झूठे ही हां हां करता रहा। वालिद साहब को दिलीप कुमार की फिल्म देखने का इतना शौक था कि दिलीप कुमार की कोई नई फिल्म लगती तो मंगल के दिन नाईट शो में अपने दोस्त मगन भाई के साथ फिल्म देखने जाते क्यूंकि मगन भाई मंगल की साप्ताहिक छुट्टी रखते फिर जुमे के दिन वालिद साहब अपने काम की छुट्टी रखते और शाम छह बजे के शो जो उन दिनों में फैमिली के लिए मुनासिब शो माना जाता था मम्मी और मुझे साथ लेकर उसी फिल्म को फिर से देखने जाते। आज ना वालिद हैं, ना बड़े अब्बा, अम्मी लेकिन दिलीप कुमार साहब के इंतक़ाल की सुनकर जो बचे हैं वो उन दिनों की यादों में खो गए हैं।

■ मुजफ्फर अली

सरहद पार दिलीप साहब की दीवानगी का आलम

दिलीप केसानी

दिलीप कुमार साहब चले गए। इस बात पे यक़ीन कर पाना बहुत मुश्किल है। वो नया दौर ही तो था जो बड़ी रफ़्तार से गुज़र गया। जिस तरह से बॉलीवुड नाम से अंदाज़ा हो जाता है कि हम हिंदी फिल्म इंडस्ट्री का ज़िक्र कर रहे है लेकिन इसी फिल्म इंडस्ट्री की असली पहचान दिलीप साहब थे और वो हमेशा इसकी पहचान रहेंगे।

वो दौर था 1970 से 80 के बीच का, जिस दौर में ना तो मोबाइल हुआ करते थे और ना ही इन्टरनेट, सीडी, पेन ड्राइव यहाँ तक कि कम्प्यूटर्स तक नहीं हुआ करते थे। उस दौर में हर किसी के लिए अपनी अलग पहचान बना पाना इतना आसान नहीं हुआ करता था, जितना आज है। चलए बात अगर भारत की कर ली जाए तो फिर भी काफी हद तक हिंदी फिल्मो की दीवानगी को समझा जा सकता है लेकिन सरहद के उस पार यानी पाकिस्तान में इस वक्त माहौल कुछ और हुआ करता था।

मैं बात कर रहा हूँ वहां के रेगिस्तानी हिस्से की जहाँ उस दौर में ना तो पक्की सड़कें हुआ करती थी और न ही कोई बड़ी सुविधा हुआ करती थी यहाँ तक कि लाइट भी लोकल जनरेटर से शहर या देहात के हिस्सों में कुछ घंटों के लिए दी जाती थी। लेकिन उस दौर की इतनी बड़ी परेशानियों के बावजूद भी एक शख्स मुम्बई की फिल्मों में काम करके अपनी शख्सियत की रौशनी उन गांवों तक ले गया।

वो दौर था ब्लैक एंड व्हाइट टी. वी., वी. सी. आर. और कैसिट्स का और वो भी भारत से सरहद पार तस्करी करके ले जाया जाता था और काफी बड़ा मुनाफा भी लोग उन कैसिट्स से कमाया करते थे। ना रोड हुआ करते थे वहाँ और न ही बसें लेकिन उसके बावजूद भी दिलीप साहब की दीवानगी ऐसी कि वो कैसिट्स पाकिस्तान के उन इलाकों में कुछ ही दिनों में पहुँच जाया करती थी। जो जनरेटर शहर या गाँव को कुछ घंटों के लिए ही बिजली दिया करते थे, दिलीप साहब की नयी फिल्म की कैसेट आने पर वो अपना सप्लाई टाईम बढाया करते थे ताकि लोग दिलीप साहब की फिल्म देख सकें। ऐसे ना करने पर लोग हंगामा खड़ा कर देते थे।

मेरा जन्म पाकिस्तान का है और उसी दौर का ही है जब दिलीप साहब की दीवानगी उफान पर थी। मेरे पापा श्री परमानन्द और मेरे बड़े पापा श्री कस्तूरचन्द जी दिलीप साहब के काफी बड़े फेन रहे है। मेरे जन्म की राशि के हिसाब से नाम कुछ और आया था लेकिन दिलीप साहब की दीवानगी ने मुझे भी यह नाम दिलवा गयी। यह बात उस दौर में तय थी कि अगर वहाँ हिन्दू घरों में कोई लड़का जन्मा तो उसका नाम दिलीप और अगर मुस्लिम घरों में लड़का जन्मा तो उस बच्चे का नाम युसूफ रखा जायेगा।

दूसरी हैरत की बात ये भी हुआ करती थी कि स्कूलों में मास्टर साहब भी दिलीप नाम वाले लड़कों पर हाथ नहीं उठाया करते थे। मैंने वहाँ हिन्दू घरों के मंदिरों में भी दिलीप साहब की तस्वीरें देखीं है। उनकी दीवानगी ना सिर्फ उस दौर में थी बल्कि आज के दौर में भी महसूस की गयी जब उनकी फिल्म मुग़ले आज़म को फिर से रंग भर के रिलीज किया गया तो उस ने भी बॉक्स ऑफिस की ऊंचाइयों को छूआ। उस दौर में हर कोई दिलीप साहब जैसा बनना चाहता था, उनके जैसा दिखना चाहता था जो जो नई फिल्म आई लोगों ने उस किरदार को खुद अपने अन्दर महसूस किया। किरदार के नाम को अपनाया। डबल रोल तो फिल्मो में काफी कलाकारों ने किया होगा लेकिन बैराग फिल्म में उन्होंने ट्रिपल रोल भी निभाया।

दिलीप साहब की सादगी उनकी शख्सियत को और भी ज्यादा रोशन करती थी। मेरे हाल के शहर जोधपुर में भी उनका आना हुआ और तीन दिन वो जोधपुर में रुके, कहते हैं कि उन्हों ने महंगी होटल में ना रुक कर सरकारी गेस्ट हाउस में रुके। अपना 75वां जन्मदिन भी जोधपुर में ही मनाया था और जिस किसी ने भी मिलना चाहा वो दिल खोल कर उस से मिले। सादगी ऐसी कि छोटी सी छोटी दूकान के महूरत भी अपने हाथो से करने के न्योते को भी कबूल किया। राजस्थान का खाना उनको इतना पसंद आया कि उनको जोधपुर से मुम्बई जाने वाली फ्लाईट भी मिस हो गयी थी।

दुनिया के चाहे जिस मुल्क में भी उनके चाहने वाले हों, चाहे उनको पकिस्तान का सब से बड़ा सम्मान 'निशाने इम्तियाज़' मिल चूका हो। चाहे उनका जन्म पाकिस्तान में हुआ हो लेकिन उनके दिल में हमेशा हिन्दुस्तान बस्ता था और वो इस बात का एहसास अपनी हर फिल्म के हर किरदार से दे दिया करते थे।

कहने को दिलीप साहब चले गए। वो लौट कर नहीं आने वाले लेकिन उनका एहसास हम कई सदियों तक नहीं भूलने वाले। 1944 में आई उनकी पहली फिल्म ज्वार भाटा से 1998 में आई उनकी आखिरी फिल्म किला तक उनकी हर फिल्म ने आने वाले सभी कलाकारों को सीखने के लिए काफी कुछ छोड़ रखा है।

उनके जाने का दर्द, ग़म, तकलीफ़ ज़िंदगी भर हम को रहेगी लेकिन सिर्फ ये बात राहत देगी कि हम ने दिलीप कुमार साहब के दौर को देखा। हमारा बचपन उनके दौर से होकर गुज़रा।

ऊपर वाला दिलीप साहब को जन्नत नसीब करे और वो हैं ही इस काबिल।

यादें याद आती है...

स्वागत...राजू क़ादरी जोधपुर में दिलीप कुमार का स्वागत करते हुए...

एक समारोह में मनमोहन कर्नावट दिलीप कुमार के साथ...

'कोहिनूर'

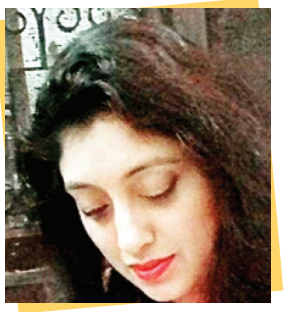

सबाहत इक़बाल

आज से पहले कभी कोहिनूर यानि यूसुफ़ साहब के लिए कुछ नहीं लिखा क्यूँकि हमेशा ये महसूस होता है कि मेरे पास वो अल्फ़ाज़ ही नहीं हैं जो यूसुफ़ साहब की शख्सियत को छू सकें। यहाँ मैं उनको यूसुफ़ साहब इसलिए लिख रही हूँ कि दिलीप कुमार को अगर हम जानते हैं तो उनकी बेहतरीन अदाकारी और फ़िल्म इंडस्ट्री में उनकी अदाकारी से बनाये गए उस मक़ाम के लिए जिसको छूना या वहाँ तक पहुँचने की कोशिश करने का ख़्वाब उनके बाद आने वाले हर कलाकार ने देखा मगर यूसुफ़ खान एक ऐसी शख्सियत का नाम है जो वाक़ई कोहिनूर की तरह बेशक़ीमती और दुनिया में सिर्फ़ एक ही है । यही वजह है उन्होंने 70 से भी कम फ़िल्में की और अपने उसूलों और शख्सियत के मअयार को पैसों के लिए कम नहीं किया और हमेशा कोहिनूर की तरह बेशक़ीमती रहे । यूसुफ़ साहब की पूरी जिंदगी एक यूनिवर्सिटी की तरह है जिसके हर डिपार्टमेंट से तालीम हासिल की जाती है ।

यूसुफ़ साहब जिंदगी के हर रोल में बेहतरीन थे फिर वो अदाकार हो, बेटे हो भाई हो दोस्त हो या इंसान हो। अदब और शायरी के एक ऐसे जानकर जो बड़े से बड़े शायरों के अशआर को दुरुस्त करने का हुनर रखते थे। जब बात कोहिनूर की हो रही हो तो उस जौहरी का जिक्र लाज़िमी है जो सायरा बानो की शक्ल में खुदा ने यूसुफ़ साहब को तोहफ़े में दिया ।

बिना सायरा बानो के यूसुफ़ साहब की शख्सियत मुकम्मल नहीं होती। एक ऐसी शोख़ चंचल मॉडर्न लड़की जिसकी तालीम लंदन में रहकर पूरी हुई। 12 साल की उम्र से जिसने दुआ में सिर्फ़ यही माँग रखी के ख़ुदा उसे मिसेज़ यूसुफ़ खान बना दे शायद यह दिल से निकली दुआ इतनी सच्ची थी कि ख़ुदा ने ये बेशक़ीमती कोहिनूर सायरा जी को तोहफ़े में दे दिया जो सिर्फ़ एक था और क़यामत तक एक ही रहेगा। उस कोहिनूर को सायरा जी जैसा जौहरी ही डिज़र्व करता था। सायरा जी हमेशा साये की तरह साथ रहीं और यूसुफ़ साहब के आखिरी सफ़र तक उनकी खिदमत एक इबादत की तरह की। यूसुफ़ साहब के लिए सायरा जी से कम और सायरा जी के लिए यूसुफ़ साहब से कम हमसफ़र दोनो डिज़र्व नहीं करते थे।

यूसुफ़ साहब पूनम की रात की ठंडी चाँदनी की तरह हैं जो देखने और उनको सुनने वालों को मदहोश करती है। उनकी जिंदगी के हर पहलू हर किस्सों को हम सुनते रहते हैं इसीलिए यहाँ किसी किस्से का जिक्र नहीं कर रही हूँ सिर्फ़ उस बेशक़ीमती शख्सियत को महसूस करते हैं। हम ख़ुशकिस्मत हैं जो हमने ऐसा पुरनूर सितारा देखा।

बच्चों की दुनिया...

हमारी खूबसूरत दुनिया के दोस्त

डॉ कविता माथुर

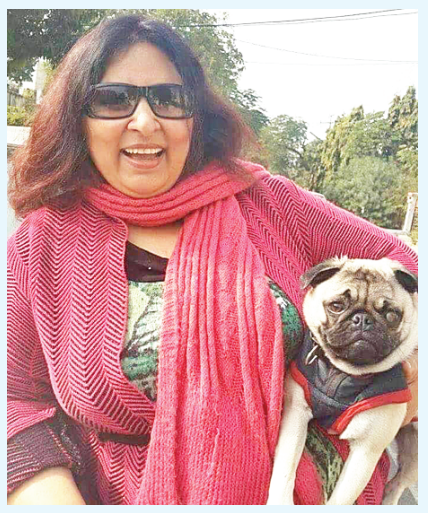

प्यारे बच्चों को बैग्ज़ भर-भर के चॉकलेट्स और ढेर सारा प्यार ...हॉ तो बच्चों , हम बात कर रहे थे डॉग्स के बारे में! है न! जैसा कि मैंने बताया ही था कि डॉग्स भेड़ियों से इवॉल्व हुए थे; हालाँकि कुछ वैज्ञानिकों का ये भी दावा है कि ये भेड़ियों और जैकाल्स की मेटिंग का परिणाम है। ख़ैर, जो भी हो, आधुनिक डॉग्स, भेड़िये वग़ैरह इन सब के पूर्वज कॉमन हैं ये बात तो तय है।

जब भेड़िये इंसानों के साथ रहने लगे तो देखा गया कि ये शिकार के अलावा और भी कई तरह से मददगार साबित हो सकते हैं । ये ख़तरे को सूंघ लेते थे, सर्द रातों में ये लोगों को गर्म रखते थे और खेलते भी थे । पता है जब ये इंसान के साथ रहने लगे तो ये सोचते थे कि इंसान भी इन्हीं के ' पैक' (डॉग्स या भेड़ियों के समूह को 'पैक' कहते हैं।) का हिस्सा हैं। है न ये मज़ेदार बात!

इन्हें पालतू बनाने (टेमिंग) के शुरुआती दौर में इंसान ने अलग-अलग मक़सदों से इनकी लगभग दो सौ ब्रीड्स तैयार कर लीं थीं; चाहे वो ताक़त के लिए मैस्टिफ़ हो, स्पीड के लिए ग्रे-हाउण्ड या स्मैल पहचानने के लिये ब्लड-हाउण्ड । चाहे वो शिकार के लिए हों, हर्डिंग (पशुओं को चराने के लिए ले जाते समय उन्हें भटकने से बचाने के लिए) हो या बस पालतू बनाने के लिए। तो डॉग्स भी अलग-अलग किस्मों में इवॉल्व होते गये।

बच्चों, क्या आपको पता है डॉग्स सहित अन्य जानवरों को सबसे पहले कहाँ डोमिस्टिकेट किया गया था? ज़ाहिर है वही किया गया होगा न जहाँ सबसे पहले सभ्यताओं का जन्म हुआ ! हाँ बच्चों, बिल्कुल सही समझा आपने। और वो जगह , जो कृषि, सिंचाई, तकनीकी खोजों सहित लेखन और पहिये तक की जन्मस्थली है और जिसे अपनी इन विशेषताओं के कारण क्रैड्ल ऑव सिविलाइज़ेशन' भी कहा जाता है, है मिडिल ईस्ट की 'फ़र्टाइल-क्रैज़ेंट'। फ़र्टाइल इसलिए क्योंकि यहाँ की मिट्टी उपजाऊ है; उपजाऊ क्योंकि ये यूफ्रेटीज़ और टाइग्रस नदियों के समीप है; क्रैज़ेंट इसलिये कि ये इसी आकार में है।तो यहाँ पर साइट-हाउण्ड्स या गेज़-हाउण्ड्स , जो कि स्मैल से ज़्यादा तेज आँखों से शिकार को चेज़ करते थे , पाले गये। इन्हीं के वंशज हैं अफ़ग़ान-हाउण्ड, ग्रे-हाउण्ड और सैलुकी । सैलुकी के बारे में तो ये कहा जाता है कि इजिप्ट के लोग कलाई पर बाज़ और साथ में सैलुकी रखकर शिकार करते थे । कारण, एक तो इनकी ताक़त ग़ज़ब की थी, दूसरे इनकी स्पीड सबसे तेज़, बासठ किलोमीटर की रफ़्तार से दौड़ते हैं और आज भी इस्तेमाल होते हैं। इनका नाम भी अरब के एक शहर 'सैलक' के नाम पर है । इजिप्ट में तो इन्हें ममीफाई भी किया गया है।

वैसे फ़ास्टेस्ट डॉग होता है ग्रे-हाउण्ड, जो चौंसठ किलोमीटर की स्पीड से दौड़ता है।

अब अगले हफ़्ते मैं डॉग-ब्रीड्स के बारे में बताऊँगी, तब तक के लिये अरबी में मा' अस्सलामा, यानी कि बाय-बाय।

hillviewsamachar@gmail.com

हिलव्यू समाचार

04

जयपुर >> बुधवार, 14 जुलाई, 2021

लॉयन्स क्लब्स इंटरनेशनल के इंटरनेशनल डायरेक्टर लायन विनोद कुमार लडिया का सम्मान समारोह

लॉयन्स क्लब पाली सिटी द्वारा पावणा पैलेस पाली में गरिमापूर्वक आयोजित

[सभी फोटो : भारतभूषण जोशी

कार्यालय संवाददाता

पाली। लायन लडिया जी लॉयन्स क्लब्स इंटरनेशनल के महान व उच्च पद तक पहुंचने वाले राजस्थान के पहले लायन लीडर हैं । आपका परिचय देते हुए लायन रिज़वान ऐजाज़ी ने बताया कि लायन लडिया जी पूर्व में प्रांत 323 ई-2के प्रान्तपाल रह चुके हैं ।

तत्कालीन मुख्यमंत्री भैरोंसिंह शेखावत की सलाह पर आपने आदिवासी क्षेत्र डूंगरपुर में अपनी औद्योगिक इकाई राजस्थान सिंटेक्स स्थापित कर हज़ारों व्यक्तियों को रोज़गार उपलब्ध कराया ।

लायन लडिया टेक्सटाइल सेक्टर के प्रमुख उद्योगपति हैं जिन्होंने देश के तीन प्रधानमंत्रियों अटलबिहारी वाजपेयी, मनमोहन सिंह व नरेंद्र मोदी सरकार के साथ सलाहकर समिति में स्थान बनाया है।

उक्त समारोह में पूर्व प्रान्तपाल लायन अनिल नाहर ने लॉयन्स क्लब पाली सिटी की वर्ष 2021-2022 की कार्यकारिणी को शपथ दिलवाई जिसमें अध्यक्ष लायन देवेन्द्र शर्मा, सचिव मणिशंकर खत्री, कोषाध्यक्ष अमरचंद मूथा सहित विभिन्न पदाधिकारियों ने शपथ ली ।

उक्त अवसर पर लायन अशोक भंडारी व उनकी पत्नी लायन लेडी किरण भंडारी ने मरणोपरांत अंगदान व देहदान की घोषणा की। अभिभूत लायन लडिया ने भंडारी दम्पत्ति को शाल पहना कर व प्रशंसा पत्र द्वारा अभिनन्दन किया गया।

समारोह में पूर्व प्रान्तपाल लायन अरविंद शर्मा व वीके त्रिवेदी, केवल चंद गुलेच्छा, मनमोहन कर्नावट, राजरूपचन्द मेहता, बीएल जाजू, सोहन जी कवाड़, भगवान सहाय सहित विभिन्न क्लब्स के लायन लायन लेडीज़ ने भाग लिया। समारोह का संचालन लायन सुरेश जैन ने किया।

अनहद नाद

अनबोली भाषा...

अनबोली भाषा बोलूँ मैं ,
बिन संकेतों सब कुछ समझूँ...
बिन पंखों से उड़ता फिरता,
बिना पैर चल मंज़िल पहुँचूँ...
अनबोली भाषा...

बिन दांत काल को चबा चबा कर,
पेट भरुँ आखर से मेरा...
मीठी धुन औ कलमां-ए-कुन,
गुन-गुन सुन, बन बावरा नाचूँ...
अनबोली भाषा...

लोग कहें ये हुआ दीवाना,
किसी सयाने को बुलवाओ...
पीर-फकीर-वैद्य नब्ज़ देखें,
'अनहद' सुन, कहें क्या मैं जांचूँ...
अनबोली भाषा...

नहीं मुसलमां ना बुत पूजक ,
तुम क्या जानों कौन मुवाहिद...
कलाम -इलाही मलंग जागा ,
अन लिखी धुन मन-मन बाचूँ...
अनबोली भाषा...

दयाल परमार

ग़ज़ल

हम 'प्यार' में जिनके नाकाम हुए बैठे हैं।
'दर्द' दे के महफिल में वो अंजान बने बैठे हैं।

जताते तो हैं प्यार है 'बेइन्तहाँ' हमसे पर,
इसका भी गैरों में ही 'ऐलान' किये बैठे हैं।

पुकारते हैं 'पत्थर-दिल' जो हमें ज़माने से,
खुद 'मोम' होकर भी 'पाषाण' बने बैठे हैं।

जुदा करते हैं रोज़ 'खुद' को मेरी साँसों से,
फिर भी आँखों में देखो 'दरबान' बने बैठे हैं।।

टूट कर डूब रही 'जिनमें' दिल की धड़कन,
साहिल होकर भी किरण 'तूफान' बने बैठे हैं।।

किरण मिश्रा

थंडर स्टिक नहीं लगाने की लापरवाही से हुई 11 मौतें

आमेर में नहीं था आकाशीय बिजली से बचाने वाला तड़ित चालक, सभी पर्यटन स्थलों पर लगाने के हैं निर्देश; मौसम विभाग के पूर्व डीजी बोले- ये बहुत जरूरी

कार्यालय संवाददाता

जयपुर। आकाशीय बिजली गिरने से कल जयपुर में हुए हादसे में 11 पर्यटकों की मौत ने सबको हिलाकर रख दिया है। राजस्थान में बिजली गिरने से अब तक का सबसे बड़ा हादसा माना जा रहा है। हादसे के बाद अब पर्यटन स्थलों पर आकाशीय बिजली से बचाव के उपायों की पोल खोल कर रख दी है। प्रदेश के ऊंचाई पर मौजूद मॉन्यूमेंट्स और पर्यटन स्थलों के अलावा कई ऊंची इमारतों पर तड़ित चालक ही नहीं लगे हैं। आमेर के जिस वॉच टॉवर पर बिजली गिरी उस पर तड़ित चालक लगा हुआ होता तो 11 जिंदगियां मौत के मुंह में नहीं समाते। सरकार ने ऊंचाई वाले मॉन्यूमेंट्स पर थंडर स्टिक लगाने के प्रावधानों पर ध्यान ही नहीं दिया।

इस पूरे मामले में सरकारी विभागों की मैनेजमेंट में बड़ी चूक सामने आई है। एक्सपर्ट्स का भी मानना है कि तड़ित चालक होता तो वहां मौतें नहीं होतीं। आमेर किला, नाहरगढ किला, हवामहल सहित राजधानी के उंचाई पर मौजूद मॉन्यूमेंट्स पर लाइटनिंग रोड तड़ित चालक नहीं लगे हैं, जबकि नाहरगढ़,आमेर की पहाड़ियों के अलावा राजधानी के सभी पर्यटन स्थल ऊंचाई पर हैं और अब बारिश के दिनों में बिजली गिरने का खतरा बना रहता है।

बिल्डिंग बायलॉज में है थंडर स्टिक लगाने का प्रावधानः प्रदेश में मल्टी स्टोरी बिल्डिंग्स पर थंडर स्टिक लगाने की अनिवार्यता है। बिल्डिंग बायलॉज में इसका प्रावधान है। राजस्थान सहित सभी प्रदेशों में इसका प्रावधान है, लेकिन इन्हें जांचने की व्यवस्था नहीं है। प्रदेश के मॉन्यूमेंट्स सरकार के अधीन आते हैं, लेकिन इन पर थंडर स्टिक लगाने की दिशा में कभी ध्यान ही नहीं दिया।

मौसम विभाग के पूर्व डीजी बोले, सभी उंची इमारतों, मॉन्यूमेंट्स पर लगें तड़ित चालकः इस घटना के बाद प्रदेश के पर्यटक स्थलों और मॉन्यूमेंट्स पर आकाशीय बिजली से बचाव का इंफ्रास्ट्रक्चर लगाने और सावधानियों की तरफ ध्यान खींचा है। एक्सपर्ट्स के मुताबिक आकाशीय बिजली से बचाव के लिए प्रदेश भर में ऊंची इमारतों, मॉन्यूमेंट्स और पर्यटक स्थलों पर तड़ित चालक लगाने की जरूरत है।

मौसम विभाग के पूर्व महानिदेशक और अंतर्राष्ट्रीय मौसम वैज्ञानिक डॉ. लक्ष्मण सिंह राठौड़ ने कहा, आकाशीय बिजली से जनहानि को रोकने के लिए हमें तीन बातों पर फोकस करना होगा। पहला- जितने भी मॉन्यूमेंट्स हैं उनके इंफ्रास्ट्रक्चर को रिव्यू करके वहां तड़ित चालक लगाए जाएं। तड़ित चालक आकाशीय बिजली का चार्ज सीधा जमीन में भेज देता है।

दूसरा अहम बिंदु है जागरूकता का। नेशनल डिजास्टर मैनेजमेंट आथरिटी (NDMA) की गाइडलाइन का प्रसार प्रसार हो। तीसरा बिंदु है बिजली जनित हादसों से पीड़ितों के रेस्क्यू की नए सिरे से एसओपी तैयार हो। आकाशीय बिजली से घायल अस्पताल जाए तो उसका घायल के हिसाब से ही नहीं, मेंटल ट्रोमा का भी इलाज हो।

थंडर स्टिक या तड़ित चालक से बिजली गिरने से नुकसान नहीं होताः तड़ित चालक या थंडर स्टिक तांबे की बनी स्टिक होती है, थंडर स्टिक को तांबे या धातु के तार से जोड़ा जाता है, उस तार को जमीन में गाड़ा जाता है। थंडर स्टिक या लाइटनिंग कंडक्टर पर बिजली गिरती है तो धातु के तार के जरिए उसका चार्ज जमीन में पहुंचा दिया जाता है और इससे उस भवन को नुकसान नहीं पहुंचता। आकाशीय बिजली के खतरे वाले राज्यों में हर सरकारी भवन पर तड़ित चालक लगा रहता है।

रोटरी क्लब जयपुर क्राउन का शपथ ग्रहण समारोह संपन्न

जयपुर (कासं.)। रोटरी क्लब जयपुर क्राउन का शपथ ग्रहण समारोह एम आई रोड स्थित होटल में संपन्न हुआ. रोटरी क्लब जयपुर क्राउन की अधक्षया रोटेरियन श्रीमती आशा मिश्रा ने आए हुए अतिथियों को दुपट्टा व प्रतीक चिन्ह देकर सम्मानित किया. कार्यक्रम में डिस्ट्रिक्ट गवर्नर रोटेरियन श्री अशोक मंगल ने कार्यकारिणी के सदस्यों की शपथ ग्रहण करवाई. क्लब के सचिव रोटेरियन श्री योगेश मित्तल ने बताया कि कार्यक्रम में हरे कृष्णा फाउंडेशन के प्रभु श्री धर्मराज दासा, समाजसेवी दौलत त्रिलोकानी, पीडीजी रोटेरियन श्री रमेश अग्रवाल, रोटेरियन श्री विशाल गुप्ता, आदि गणमान्य लोग उपस्थित थे. रोटरी क्लब जयपुर क्राउन समाज सेवा के क्षेत्र में अपना अदम्य योदान देता रहा है।

कोरोना रिकवरी में भारत नंबर-1

देश में 3 करोड़ से ज्यादा लोगों ने वायरस पर जीत पाई, अब 5 लाख से कम एक्टिव केस

एजेंसी

जयपुर। देश में कोरोना से रिकवर होने वाले मरीजों की संख्या 3 करोड़ के पार हो गई। सबसे ज्यादा रिकवरी के मामले में भारत अब दुनिया में पहले नंबर पर है। जबकि दूसरे नंबर पर अमेरिका है। वहां 2.9 करोड़ से ज्यादा लोग संक्रमण से ठीक हो चुके हैं। तीसरे नंबर पर ब्राजील है। ये तीनों देश कोरोना से दुनिया में सबसे ज्यादा प्रभावित हुए हैं। ब्राजील में इस समय सबसे ज्यादा नए केस मिल रहे हैं। शनिवार को यहां 48 हजार लोगों में संक्रमण की पुष्टि हुई। भारत में यह संख्या 41 हजार रही। अमेरिका काफी हद तक संक्रमण की रफ्तार पर काबू पा चुका है। शनिवार को यहां 14 हजार नए मामले दर्ज किए गए।

केस और रिकवरी महाराष्ट्र में सबसे ज्यादाः देश में कोरोना से ठीक होने वालों की संख्या 6 जनवरी को 1 करोड़ और 13 मई को 2 करोड़ के पार हुई थी। यहां सबसे ज्यादा केस 61 लाख केस महाराष्ट्र में मिले हैं। हालांकि रिकवरी में भी यह राज्य सबसे आगे है। यहां 59 लाख से ज्यादा लोग रिकवर हुए हैं। 20 लाख से ज्यादा रिकवरी वाले राज्यों में केरल (29 लाख), कर्नाटक (28 लाख) और तमिलनाडु (24 लाख) शामिल हैं।

तीसरी लहर का डर बरकरार

देश में अभी कोरोना की दूसरी लहर चल रही है। इसके कमजोर पड़ने के साथ ही केंद्र सरकार ने तीसरी लहर का खतरा जता दिया है। SBI रिसर्च की एक रिपोर्ट में अगस्त में तीसरी लहर आने का दावा किया गया है। इसमें कहा गया है कि थर्ड वेव का पीक सितंबर में आएगा। यह दूसरी लहर के पीक से दोगुना या 1.7 गुना ज्यादा होगा।

स्वत्वाधिकारी, प्रकाशक, एवं मुद्रक **रिज़वान एजाजी के लिए** अम्बर ऑफसेट प्राइवेट लिमिटेड, डी.एल. टॉवर, 3-ए, विद्याश्रम संस्थानिक क्षेत्र, जेएलएन मार्ग, जयपुर में मुद्रित एवं महिमा क्लासिक 601, बी-84, रमन मार्ग, तिलक नगर, जयपुर (राज.) से प्रकाशित।
संपादक : शालिनी श्रीवास्तव, फोन : 0141-2620340 मो.: 9460678701, 7976561127 (21 जून 2014 से निरन्तर प्रकाशित) **hillviewsamachar@gmail.com**